प्राकृत धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र : एक दृष्टि

प्रोफेसर प्रेम सुमन जैन, उदयपुर

भगवान् बुद्ध के विश्वव्यापी उपदेश पालि साहित्य के विभिन्न ग्रन्थों में सुरक्षित हुए हैं। ऐसे पालि ग्रन्थों में 'धम्मपद' प्रमुख है, जो सुत्तपिटक के पाँचवें खुददक निकाय के ग्रन्थों में सम्मिलित है। इस धम्मपद में 26 वर्ग हैं, जिनमें 423 पालि गाथाएँ हैं। इस धम्मपद के विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुए हैं और ग्रन्थ के मूल विषय पर शोधात्मक व्याख्याएँ भी विद्वानों ने प्रस्तुत की हैं। धम्मपद ग्रन्थ लोक जीवन एवं नीति–वचनों का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इस कारण पालि धम्मपद के अतिरिक्त संस्कृत धम्मपद, चीनी धम्मपद, तिब्बती धम्मपद आदि के अनेक संस्करण प्रकाश में आये हैं।[1] इसी परम्परा में खरोष्ठी लिपि में लिखित गांधारी प्राकृत भाषा में निर्मित एक प्राकृत धम्मपद भी विद्वानों के अथक सारस्वत पुरुषार्थ से अस्तित्व में आया है। इनमें श्री बेनीमाधव बरुआ और शैलेन्द्र नाथ मित्र द्वारा 1921 ई. में सम्पादित कलकत्ता संस्करण तथा 1962 ई. में जॉन ब्रो (John Brough) द्वारा गांधारी प्राकृत धम्मपद ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ है। इन दोनों संस्करणों ने प्राकृत धम्मपद की तरफ विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है।

अभी लगभग 25 वर्ष पूर्व 1990 ई. में प्रोफेसर भागचन्द्र जैन भास्कर ने विद्वत्तापूर्ण भूमिका के साथ प्राकृत धम्मपद का नया संस्करण प्राकृत भारती अकादमी जयपुर से प्रकाशित कराया है।[2] यह संस्करण कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। देवनगरी लिपि में प्रकाशित यह पहला प्राकृत धम्मपद है। गाथाओं का हिन्दी एवं अंग्रेजी अनुवाद धम्मपद के विषय को समझने में सहायक है। इस धम्मपद का आन्तरिक विश्लेषण प्राकृत भाषा के विकास को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण तथ्य उपस्थित करता है। अन्य दार्शनिक परम्परा के नीतिपरक ग्रन्थों से इस प्राकृत धम्मपद की तुलना शोध की नई दिशा प्रदान करती है। प्राकृत धम्मपद के विषय का यद्यपि प्राकृत आगम के अनेक ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है, किन्तु प्रस्तुत आलेख में प्राकृत के प्राचीन ग्रन्थ उत्तराध्ययनसूत्र तथा इस प्राकृत धम्मपद के कतिपय बिन्दुओं का तुलनात्मक विश्लेषण करने का प्रयत्न है।

पालि धम्मपद की रचना प्राचीनतम है और प्राकृत धम्मपद का संकलन उत्तरकालीन माना जाता है। विद्वान् प्राकृत धम्मपद का समय लगभग ईसापूर्व प्रथम शताब्दी मानते हैं।[3] जैन आगमों के प्राचीन ग्रन्थ ईसा सन् के पूर्व में संकलित हो चुके थे, यद्यपि उनका लेखन कार्य उत्तरकालीन माना जाता है। फिर भी प्राकृत धम्मपद और उत्तराध्ययनसूत्र गाथाओं में इससे भी पूर्ववर्ती विचारों, नीतितत्त्वों के अंश प्राप्त होते हैं।

प्राकृत धम्मपद यद्यपि पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं हुआ है। उसका कुछ भाग ही प्राकृत गाथाओं के रूप में उपलब्ध है, जिसका नागरी लिपि में रूपान्तरण प्रोफेसर भागचन्द जैन भास्कर ने प्रस्तुत किया है। इस प्राकृत गाथाओं के पाठ एवं

उत्तराध्ययनसूत्र के ब्यावर संस्करण के पाठों एवं विचारों के तुलनात्मक अध्ययन पर दृष्टि रखना संगत होगा।

ब्राह्मण स्वरूप

प्राकृत धम्मपद का प्रथम वर्ग ब्राह्मण वर्ग है, इसमें ब्राह्मण के विभिन्न गुणों का वर्णन है। धम्मपद ब्राह्मण वह कहलाता है जो पूर्व जन्म को जानता है, स्वर्ग एवं नरक (अपाय) को समझता है, जिसका जनम–मरण क्षीण हो चुका है, जो प्रज्ञावान है, जिसने सभी कार्य पूरे कर लिये हैं, वही ब्राह्मण है, वही मुनि है। तीन विद्याओं से जो युक्त है, विद्या और आचरण से जो सम्पन्न है, वही ब्राह्मण है। यथा–

पूर्वे निवस यो उवेदि, स्वग अवय य पशदि।
अथ जति–क्षय प्रतो, अभिञ–वोसिदो मुणि।।
एदहि तिहि विजहि, त्रेविजु भोदि ब्रह्मणु।
विज–चरण सवर्णो ब्रह्मणो दि प्रवुचदि।।

–प्रा. ध. ब्रा. वर्ग, गाथा 5–6

प्राकृत धम्मपद में ब्राह्मण के इन गुणों के अतिरिक्त उसे निम्नांकित गुणों वाला भी कहा गया है–

1. सद्गति–दुर्गति का ज्ञान रखने वाला।
2. संयम एवं दम का साधक।
3. तृष्णा के स्रोत को काटने वाला
4. हिंसा के कार्यों से निवृत्त होने वाला।
5. पापों को त्याग देने वाला।
6. समता का आचरण करने वाला।
7. अपरिग्रही वृत्ति धारण करने वाला।[4]
8. कामभोगों से अलिप्त रहने वाला।
9. रागद्वेष और अविद्या जैसे द्वेषों से रहित।[5]
10. आक्रोधी, अनासक्त और निर्भय गुण वाला।
11. ध्यानी, ज्ञानी मेधावी और साधक व्यक्ति।
12. त्रस (चर) और स्थावर (अचर) जीवों में हिंसा से विरत ।

यथा–

निहइ दण भूदेषु त्रसेषु थवरेषु च।
यो न हदि न घधेदि तम अहो ब्रोमि ब्रम्हण।।

– ब्राम्हण वर्ग, गा. 18

प्राकृत आगम ग्रन्थों में कई स्थानों पर सच्चे ब्राह्मण के गुणों का निरूपण है। उत्तराध्ययनसूत्र के पच्चीसवें अध्ययन में यज्ञीय (जन्नइज्ज) का जो विषय है उसमें सच्चे यज्ञ का निरूपण और हिंसक यज्ञों का निषेध है। इसी क्रम में जयघोष (जैन श्रमण) और विजय घोष (यज्ञीय ब्राम्हण) के बीच हिंसक यज्ञ के निषेध को लेकर संवाद होने लगता है। उसी क्रम में जयघोष श्रमण सच्चे ब्राह्मण के स्वरूप का विवेचन करता है।[6] इस प्रसंग में प्रस्तुत मूल प्राकृत गाथाएँ प्राकृत धम्मपद की

गाथाओं से विशेष साम्य रखती हैं– शब्दों में भी और अर्थों में भी। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि जो अग्नि के समान सदा पूजनीय है, जिसे लोक में कुशल पुरुषों के द्वारा ब्राह्मण कहा है, हम उसे ब्राह्मण कहते हैं–

जे लोए ब्रम्भणो वुत्तो अग्गी वा महिओ जहा।
सया कुसलसंदिद्ठं तं वयं बूम माहणं।। **–उत्तरा. 25/19**

ऐसा वह व्यक्ति प्रिय जनों के संयोग पर अनुरक्त नहीं होता और उनके वियोग पर शोक नहीं करता तथा आर्यवचन (अर्हत्वाणी) में रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं–

जो न सज्जइ आगन्तुं पव्वयन्तो न सोयई।
रमए अज्जवयणंमि तं वयं बूम माहणं।। **–उत्तरा. 25/20**

जो व्यक्ति कसौटी पर कसे हुए और अग्नि में तपाकर शुद्ध किये हुए स्वर्ण की तरह विशुद्ध (मलरहित) है, जो रागद्वेष और भय से रहित है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं (उत्तरा 25/21)। आगे कहा गया है कि जो त्रस और थावर जीवों को सम्यक् प्रकार से जानकर उनकी मन–वचन–काय से हिंसा नहीं करता उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। यथा–

तसपाणे वियाणेत्ता संगहेण य थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेणं तं वयं बूम माहणं।। **–उत्तरा, 25/23**

यहाँ प्राकृत धम्मपद की 18वीं गाथा के शब्द भी तुलनीय है–

प्राकृत धम्मपद	**उत्तराध्ययनसूत्र**
त्रसेषु	तसपाणे
थवरेषु	थावरे
निहइ	न हिंसइ
न हदि	न हिंसइ
न घधेदि	तिविहेणं न हिंसइ
तं अहो ब्रोमि ब्रमण	तं वयं बूम माहणं

इसी प्रकार प्राकृत धम्मपद की गाथा क्रमांक 21 में कहा गया है कि जो कमल के पत्तों पर जल के समान और आरे की नोक पर सरसों के समान काम–भोगों में लिप्त नहीं होता उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। यथा–

वारि पुष्कर–पत्रे व, अरगेरिव सर्षव।
यो न लिपदि कमेहि तं अहु ब्रोमि ब्रम्मण।।

यही भाव उत्तराध्ययनसूत्र की इस गाथा में निहित है कि–

जहा पोमं जले जायं नवोवलिप्पइ वारिणा।
एवं अलित्तो कामेहिं तं वयं ब्रूम माहणं। **– उत्तरा. 25/27**

पालि धम्मपद में काम भोगों से अलिप्त ब्राह्मण की प्रशंसा इन्हीं शब्दों में की गयी है। यथा–

वारि पोक्खरपत्ते व आरग्गरिव सासपो।
यो न लिप्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।

–पालि धम्मपद, वर्ग 26, गा. 19

प्राकृत आगम ग्रन्थों में इस गाथा की उपमा का प्रायः प्रयोग देखने को मिलता है और वहाँ ब्राह्मण के सच्चे स्वरूप को बताने का भी प्रयत्न है। प्राकृत धम्मपद में जहाँ ब्राह्मण के लिए ब्रम्मण शब्द प्रयुक्त है, वहाँ प्राकृत आगम ग्रन्थों में 'माहण' शब्द का प्रयोग है। इसका अर्थ भी श्रमण परम्परा का द्योतक है कि जो 'माहण' मत मारो (अहिंसा) का जीवन में पालन करे वह ब्राह्मण है। इसी अहिंसक प्रवृत्ति से माहण (ब्राह्मण) को आगे चलकर श्रावक कह दिया गया है।[7]

प्राचीन भारतीय साधक परम्परा में श्रमण, ब्राह्मण, मुनि आदि शब्द परस्पर घुले–मिले थे। वे उच्च चारित्रिक गुणों एवं पवित्र विचारों वाले व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करते थे। उनका कर्म ही उनकी पहचान था, जन्म अथवा जाति नहीं। उत्तराध्ययनसूत्र में स्पष्ट कहा गया है कि समभाव को धारण करने से श्रमण, ब्रह्मचर्य के पालन करने से ब्राह्मण और ज्ञान की पूर्णता से मुनि तथा तपश्चरण से तापस की पहचान है।[8] यद्यपि ये सभी गुण किसी एक साधक में भी होने चाहिए। गुण सम्पन्न व्यक्ति द्विजोत्तम होते हैं (उनके दोनों जन्म श्रेष्ठ हैं) वे ही अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ है। यथा–

एवं गुणसमाउत्ता जे भवन्ति दिउत्तमा।
ते समत्था उ उद्धत्तुं परं अप्पाणमेव म।।

पालि साहित्य के सुत्तनिपात के वासेट्ठ सुत्त में ब्राह्मण के स्वरूप में गुणों का प्रायः यही वर्णन उपलब्ध है। प्राचीन साहित्य में क्षमा, दान, दम, ध्यान, सत्य, शौच, धैर्य और दया, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य ये ब्राह्मण के लक्षण कहे गये हैं।[9] इन गुणों से जो युक्त हो, वही ब्राह्मण है। इस प्रसंग में प्रयुक्त प्राचीन गाथाओं में अर्थ और शब्दों में पयाप्त समानता है। यथा–

धम्मपद

न मुण्डकेण समणो अव्वतो अलिकं भणं।
इच्छालोभसमापन्नो समणो किं भविस्सति।।

–पालि धम्मपद, 19/9

उत्तराध्ययनपसूत्र

न वि मुण्डिएण समणो, न ओंकारेण बम्भणो।
न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो।। –उत्तरा. 25/29

इन समान गाथाओं का सांस्कृतिक महत्त्व भी है, जो प्राचीन सन्त परम्परा के विकास का द्योतक है।

भिक्षु, श्रमण, मुनि

प्राकृत धम्मपद में दूसरा वर्ग भिक्षु वग्ग है, जिसमें 90 गाथाएं हैं। इन गाथाओं में भिक्षु के प्रमुख लक्षणों एवं स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। कहा गया है कि जो उत्तम संयमी है, अध्यात्मरत है, समाधियुक्त है, एकाकी रहने वाला है तथा संतुष्ट है उसे भिक्षु कहते हैं। यथा–

हत सञदु पद सञदु वय–सञदु सवुदिद्रिओ।
अजत्वरदो समहिदो एको सदुषिदो तं अहु भिखु।। –गाथा, 53

इस वर्ग में स्पष्ट कहा गया है कि दूसरों के पास से भिक्षा याचना करने से ही भिक्षु नहीं होता, और न वैश्यधर्म अर्थात् विषम धर्म को ग्रहण करने से भिक्षु होता है, अपितु जो इस लोक में पापों को दूर कर ब्रह्मचर्य को प्रज्ञा के साथ धारण करता है वह भिक्षु कहलाता है। यथा–

न भिक्षु तवद भोदि यवद भिक्षदि पर।
वेश्म धर्म समदइ भिखु भोदि न तवद।। –गाथा, 67

भिक्षु के अन्य विशेष गुणों का वर्णन करते समय प्राकृत धम्मपद में कहा गया है कि जो व्यक्ति सम्मानित होने पर भी धर्म धारण करे, दान्त हो, शान्त हो, संयत हो, ब्रह्मचारी हो, सभी जीवों की हिंसा से विरत हो तो वही ब्राह्मण है, श्रमण है, भिक्षु है। यथा–

अलगिदो य वि चरेअ धमु ददु शदु सञदु ब्रह्मपरि।
सवेषु भुदेशु निहइद ण, सो ब्रमणो सो षमणो सो भिखु।।
–गाथा, 80

जिसके अन्तःकरण में राग–द्वेष, मान, मिथ्यादृष्टि, शंका, पुनर्जन्म, लोभ और अविद्या ये अनुशय (पाप–संस्कार) नहीं रहते वह भिक्षु संसार को उसी प्रकार छोड़ देता है, जिस प्रकार सर्प पुरानी केंचुली को छोड़ देता है। (गा. 87)

इस प्रकार मुनि, श्रमण, भिक्षु के ये प्रमुख गुण, विशेषताएँ प्राकृत धम्मपद में समाहित हैं–

(1) संयम, (2) कर्मफल का चिन्तन करने वाला, (3) धर्म रत, (4) पापभीरू, (5) प्रज्ञावान, (6) प्रिय–अप्रिय में निरासक्त, (7) अप्रमादी, (8) धैर्यवान, (9) शान्त, (10) ब्रह्मचारी, (11) अहिंसक, (12) अक्रोधी, (13) तृष्णारहित, (14) निःशंक एवं (15) कषायरहित आदि।

प्राकृत आगमों के मूलसूत्र उत्तराध्ययनसूत्र में यत्र–तत्र श्रमण, मुनि, भिक्षु के इन्हीं गुणों और विशेषताओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं। विशेष रूप से इस ग्रन्थ के पन्द्रहवें अध्ययन में मुनि एवं भिक्षु के चरित्र का वर्णन है। इस अध्ययन का नाम भी सभिक्खुयं है। सूत्रकार कहते हैं कि मुनि पूर्वकृत कठोर वचनों के प्रयोग और वध (मार–पीट) आदि हिंसक क्रियाओं के कर्मों के फल को जानकर धैर्यशाली और आत्मसंयमी बना रहता है जो अनाकुल मनवाला है, हर्ष–विषाद से रहित है और परीषहों को सहन करने में रत है, वह भिक्षु है। यथा–

अक्कोसवहं विइत्तु धीरे मुणी चारे लाढे निच्चमायगुत्ते।
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे जो कसिणं अहियासए सभिक्खु।।

–उत्तरा. 15/3

संसार में साधना करते हुए भिक्षु की विशेषताओं का वर्णन करते हुए इस ग्रन्थ में कहा गया है कि साधक न सत्कार चाहता है, न पूजा, न वन्दना और न प्रशंसा ही। जो संयत है, सुव्रती है, तपस्वी है तथा आत्मस्वरूप गवेषक है, वह भिक्षु है। यथा–

नो सक्कियमिच्छई न पूयं नो वि य वन्दणगं कुओ पसंसं।
से संजए सुव्वए तवस्सी संहिए आयगवेसए स भिक्खु।।

–उत्तरा 15/5

उत्तराध्ययनसूत्र की गाथाओं में भिक्षु के गुणों को संक्षेप रूप में भी कहा गया है। यथा–

1. **जो विज्जाहिं न जीवइ स भिक्खु** (15.7)
   –जो सांसारिक विद्याओं द्वारा अपनी जीविका नहीं चलाता है, वह भिक्षु है।
2. **मण–वय–कायसुसंवुडे स भिक्खु** (15.7)
   –मन वचन–काय से पूर्ण रूप से संयत।
3. **पन्ने अभिभूय सव्वदंसी उवसन्ते अविहेडए स भिक्खु** (15.15)
   –प्रज्ञा प्राप्त, सहनशील, सर्वदर्शी, उपशान्त और किसी के लिए अपनी चर्या से पीड़ाकारक नहीं, अबाधक है, वह भिक्षु है।
4. **चेच्चा गिहं एगचरे च भिक्खु त्ति बेमि** (15.16)
   –जो गृहवास छोड़कर एकाकी विचरण करने वाला है वह भिक्षु है, ऐसा मैं कहता हूँ।

मन–वचन–काय के संयम को प्रधानता देते हुए अध्यात्म में लीन रहने वाले, संतुष्ट तथा एकाकी विचरण करने वाले समाधियुक्त साधक को पालि धम्मपद भी भिक्षु कहा गया है–

हत्थसंञतो पादसंञतो
वाचाय संञतो संञतुत्तमो।
अज्झत्तरतो समाहितो एको
सन्तुसितो तमाहु भिक्खू।। – 25/3

भगवान् बुद्ध ने भिक्षु और श्रमण के लिए सभी पापों से रहित होना आवश्यक बताया है। वे कहते हैं कि पापों को शमन करने वाला ही समण (श्रमण) है। यथा–

यो च समेति पापानि अणुं थूलानि सब्बसो।
समितत्ता हि पापानं समणो ति पवुच्चति।। – धम्मपद, गा. 265

भिक्षु जीवन में बाहरी प्रवृत्तियों का संयम करना और अन्तरंग साधना में संलग्न हो जाना प्रमुख कार्य है। इसके लिए जैन, बौद्ध परम्परा के प्राचीन ग्रन्थों और गीता आदि में चिन्तन में एकरूपता के दर्शन होते हैं। प्राकृत आगम ग्रन्थ सूत्रकृतांगसूत्र में

कहा गया है कि जिस प्रकार कछुआ संकट की स्थिति में अपने बाहरी अंगों को भीतर समेट लेता है उसी प्रकार मुनि साधक भी संयम के पतन के स्थानों से अपनी इन्द्रियों के विषयों को समेट कर संयम में दृढ़ रहे। यथा–

जहा कुम्मे सअंगाइं सए देहे समाहरे।
एवं पावाइं मेधावी अज्झप्पेण समाहरे।।[10]

पालि ग्रन्थों में प्रमुख संयुत्तनिकाय में भी भगवान् बुद्ध कछुवे की उपमा देते हुए कहते हैं कि कछुआ जैसे संकट को देखकर अपने अंगों को भीतर समेट लेता है वैसे ही भिक्षु भी अपने मन को वितर्कों से समेट ले, संयम कर ले।[11] यही बात गीता में भी देखने को मिलती है कि ज्ञानी सन्यासी कछुए की भांति जब विषयों से अपनी इन्द्रियों को समेट लेता है तभी उसकी बुद्धि स्थिर कही जाती है।[12]

प्राकृत धम्मपद का पूरा अंश उपलब्ध नहीं हुआ है, अतः इस प्रकाशित संस्करण में कुल 21 वर्गों की 340 गाथाओं का प्रकाशन हुआ है। इनमें अप्रमाद वर्ग, चित्त वर्ग, जरावर्ग, पण्डित वर्ग, बहुश्रुत वर्ग, शील वर्ग की विषयवस्तु की तुलना उत्तराध्ययनसूत्र की सम्बन्धित गाथाओं से की जा सकती है। यह एक पूर्ण शोधकार्य का विषय बन सकता है। कतिपय संकेत यहाँ किये जा सकते हैं।

प्रमाद–अप्रमाद विवेचन

मुनि, भिक्षु, श्रमण आदि साधक को निरन्तर कहा गया है कि वे प्रमादी (आलसी, असावधान) न बनें, अप्रमादी होकर साधना करें। प्रमाद, अप्रमाद जैन एवं बौद्ध दर्शन के सैद्धान्तिक शब्द हैं। इनकी विस्तृत व्याख्या विद्वानों के द्वारा की गयी है।[13] प्राकृत धम्मपद के अप्रमाद वर्ग में कहा गया है कि उठो प्रमाद मत करो, धर्म का आचरण करो। धर्म का आचरण करने वाला इहलोक और परलोक में सुख–शान्ति से रहता है। यथा–

उदिठ न प्रमजे अ धमु सुचरिद चरि।
धम–चरि सुहु शैअदि अस्वि लोकि परस ये ।। –गा. 110

अप्रमाद को अमृतपद कहा गया है और प्रमाद को मृत्यु का वाहक। अप्रमादी की मृत्यु नहीं होती, अर्थात् वह साधनापूर्वक निर्वाण प्राप्त कर लेता है और जो प्रमादी हैं वे तो मरे हुए के समान (मृतवत्) हैं। यथा–

अप्रमदु अमुद–पद प्रमदु मुचुणो पद।
अप्रमत न मियदि, ये प्रमत यध मुदु।। –गा. 115

पालि धम्मपद के अप्रमाद वर्ग में यह गाथा सर्व प्रथम अंकित है।[14] अन्य गाथाओं में भी प्राकृत धम्मपद के विषय की समानता है।

उत्तराध्ययनसूत्र का 32वां अध्ययन का नाम यद्यपि प्रमाद स्थान (पमायट्ठाणं) है, किन्तु इसमें प्रमाद अथवा अप्रमाद शब्दों का प्रयोग नहीं है, किन्तु साधना में जो विघ्न उपस्थित होते हैं, उन्हें दूर करने की प्रेरणा इस अध्ययन की गाथाओं में है। साधक की प्रगति को रोकने वाली प्रवृत्तियों, विघ्नों, भावनाओं को प्रमाद कहा जा सकता है। जैन ग्रन्थों में इन प्रमादों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन है।[15] उत्तराध्ययन के इस 32वें

प्रमाद–स्थान की कुछ गाथाओं को पालि धम्मपद की गाथाओं में समानता मिलती है, किन्तु प्राकृत धम्मपद को अप्रमादवर्ग की गाथाओं के अर्थों की समानता है।

प्राकृत धम्मपद के बहुश्रुत वर्ग में प्रज्ञायुक्त आगमज्ञाता श्रमण के महत्त्व का प्रतिपादन है। बहुश्रुत धर्मधारी व्यक्ति दुःखी व्यक्ति को भी निर्वाण–सुख का उपदेश देता है। उत्तराध्ययनसूत्र में बहुश्रुतपूजा नामक एक अध्ययन है, जिसमें कहा गया है कि बहुश्रुत व्यक्ति से धर्म सुशोभित होता है, वह पूज्यनीय होता है। प्राकृत धम्मपद में क्रोध, मान, माया, लोभ से मुक्त होकर विनम्र बनने की प्रेरणा क्रोध वर्ग की गाथाओं में दी गयी है। उत्तराध्ययन सूत्र में भी इन कषायों को जीतने के लिए आत्मा को जीतने की बात कही गयी है।[16] इन सब प्रसंगों का सूक्ष्म अध्ययन श्रमण परम्परा में समरसता और सौहार्द का वातावरण तैयार करता है कि साधकों का लक्ष्य आत्मकल्याण के साथ विश्वकल्याण की भावना का भी रहा है। अतः पालि प्राकृत के ग्रन्थों में प्राप्त गाथाओं के भावों एवं शब्दों के साम्य साधक सन्तों की उदारता का परिचायक है।

सन्दर्भ

1. (क) शुक्ल, एम.एस, बुद्धिस्ट हैब्रिड संस्कृत धम्मपद, 1979, पटना
   (ख) हेमन बेक : तिब्बती धम्मपद, 1911, बर्लिन
2. जैन, भागचन्द्र भास्कर : प्राकृत धम्मपद, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 1990
3. जॉन ब्रो : गांधारी धम्मपद, 1962, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी, लन्दन।
4. प्राकृत धम्मपद, ब्राह्मणवर्ग, गाथा 34
5. प्राकृत धम्मपद, ब्राह्मणवर्ग, गाथा 26
6. मधुकर मुनि : प्रधान सम्पादक, उत्तराध्ययनसूत्र, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.), 1991
7. भगवतीसूत्र प्राकृत आगम के पहले शतक के सातवें उद्देश्य की संस्कृत टीका में **'माहणस्स ति'** की व्याख्या।
8. समयाए समणो होइ बम्हचेरेण बम्भणो।
   नानेण य मुणी होइ तवेणं होइ तावसो।। —उतरा. 25/32
9. अभिधान राजेन्द्र कोश, भाग 4, पृष्ठ 1421।
10. सूत्रकृतांगसूत्र, सम्पा. मधुकर मुनि, आगम प्रकाशक समिति, ब्यावर (राज.) 1991, आठवां अध्ययन, गाथा 16
11. संयुक्तनिकाय (अनु. – जगदीश कश्यप), महाबोधि सभा, बनारस, 1954, 1.2.2
12. भगवद् गीता, राज्यपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1962, अध्याय 2, श्लोक 61
13. वर्णी, जिनेन्द्र : जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, भाग–3, प्रमाद–अप्रमाद शब्द।
14. पालि धम्मपद, सम्पा. राहुल सांकृतत्यायन, वाराणसी, 1956, अप्रमाद वर्ग, गाथा 1
15. उत्तराध्ययनसूत्र निर्युक्ति, गाथा 520।
16. प्रो. भागचन्द्र जैन द्वारा प्रस्तुत उपस्थापना, प्राकृत धम्मपद, पृष्ठ 41।

29, विद्याविहार कॉलोनी
उत्तरी सुन्दरवास
उदयपुर – 313001